ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 3.4
IJAR 2014; 1(1): 324-327
www.allresearchjournal.com
Received: 23-10-2014
Accepted: 25-11-2014

डॉ0 संतोष गुप्ता
व्याख्याता–इतिहास, एम.एस.जे. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ0 संतोष गुप्ता
व्याख्याता–इतिहास, एम.एस.जे. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर, राजस्थान, भारत

राजस्थान के प्रमुख मेले एवं उत्सव

डॉ0 संतोष गुप्ता

सारांश
राजस्थान की संस्कृति का प्रमुख आधार लोकरंजन रहा है। यहाँ मेले, पर्व एवं उत्सवों का विशेष महत्व है। उत्सवों और पर्वो को तो हम अपने सीमित क्षेत्र में प्रिय परिजनों के साथ मना लेते हैं लेकिन मेलो का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इनका महत्व सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और आर्थिक दृष्टि से विशेष उपयोगी है। राजस्थान में कैलादेवी, नागौर, डूंगरपुर, जैसलमेर, अजमेर, पुष्कर, अलवर आदि क्षेत्रों में लगने वाले मेले उल्लेखनीय हैं जो जनता के लिए एक उत्सव बन जाते हैं। लोकगीतों से मेलों में लोकसंस्कृति की झलक भी दिखाई देने लगती है। राजस्थान में आयोजित होने वाले ये मेले एवं उत्सव राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त हैं।

मुख्य शब्दः मेले एवं उत्सव, आधार लोकरंजन, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक

प्रस्तावना
राजस्थान की संस्कृति का प्रमुख आधार लोकरंजन है। इसी कारण यहाँ मेलों और उत्सवों को पर्याप्त महत्व दिया जाता है। रंग–विरंगी छटा वाला रंगीला राजस्थान समृद्ध ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परम्पराओं वाला प्रदेश रहा है। यहाँ का वैविध्यपूर्ण प्राकृतिक परिवेश अतीत का अनुभव वैभव, लोककला और हस्तशिल्प का सतरंगी संसार राजस्थानीयों को ही नहीं सम्पूर्ण देशवासियों एवं विदेशी पर्यटकों को भी लुभाता रहा है। पर्यटन, पुरातत्व, कला और संस्कृति का यहाँ अद्भुत संगम है। यही कारण है कि पिछले कुछ वर्षों में राजस्थान भ्रमण पर आने वाले पर्यटकों की संख्या द्विगुनी हुई। इसी अनुमान के आधार पर कहा जा सकता है कि विश्व के अनेक दशों से भारत भ्रमण पर आने वाले विदेशी पर्यटकों में से प्रत्येक तीसरा पर्यटक राजस्थान अवश्य आता है। यहाँ की मनोहारी संस्कृति दर्शकों एवं श्रोताओं को आकर्षित करती है। राजस्थान के अनेक स्थलों का नैसर्गिक सौन्दर्य सर्वप्रिय है, वहीं आन–बान–शान के लिए मर मिटने वालों का उत्सर्ग अद्भुत है। इसी धरा पर जन्म लेने वाले महापुरुषों ने जनकल्याणकारी कार्य कर अपना नाम सदैव के लिए अमर कर लिया। हमारी संस्कृति इन सबको स्मृत रखने के लिए अनेक पर्व और उत्सव मनाती है जो कालान्तर में मेलों का रूप ले लेती है।

हमारे सामाजिक जीवन में ऐसे पर्व, उत्सव एवं मेलों का बहुत महत्व है। उत्सवों और पर्वों को तो हम अपने सीमित क्षेत्र में प्रिय परिजनों के साथ मना लेते हैं लेकिन मेलों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसका महत्व सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से तो है ही साथ ही साथ आर्थिक दृष्टि से भी विशेष उपयोगी है। कुछ मेले किसी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना या महापुरुष की स्मृति में होते हैं, कुछ विशेष धार्मिक कृत्य को महत्व प्रदान करने के लिये होते हैं तो कुछ का उद्देश्य प्रधानतः व्यापारिक होता है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध निबंधकार डॉ. विद्यानिवास मिश्र मेलों के महत्व पर दृष्टिपात करते हुए लिखते हैं–''मेला तो आत्मीयता का विस्तार होता है, अनजाने–अपरिचित में अपना पाने की अभिलाषा होती है xxxx यह राग रंग की उत्सुकता का महासागर होती है। कितने राग मिलते हैं, एक दूसरे में घुलते हैं, कितने रंग मिलकर मेले की रंगत बनते हैं xxxx किसी की पहचान खोती नहीं थी, लेकिन सबकी पहचान मिलकर एक मेले की पहचान बन जाती थी। तरह–तरह की पगड़ी, तरह–तरह की टिकुली, बच्चों की तरह–तरह की पिपिहिरी और तमाशा दिखाने वालों के तरह–तरह के बुलावे– सबकी पहचान अलग लेकिन मिल जुलकर मेले की एक पहचान बनती थी।'' यह निर्विवाद सत्य है कि मेला विभिन्न संस्कृतियों का समन्वयन करने में महती भूमिका निभाता है, साथ ही मनोरंजन का प्रमुख साधन है।

राजस्थान में प्रमुख मेलों एवं उत्सवों की चर्चा करें तो इनमें कैला देवी, नागौर, डूँगरपुर, जैसलमेर, अजमेर, अलवर, आदि क्षेत्रों में लगने वाले मेले उल्लेखनीय हैं। ये मेले धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं तो कहीं मेलों में मनोरंजन के साथ उत्सवपूर्ण आयोजन भी होते हैं।

कुछ स्थानों के नाम स्मरण होते ही विशेष मेलों की याद ताजा कर देते हैं यथा–नागौर का पष्पु मेला, कैलादेवी का धार्मिक मेला, जैसलमेर का रामदेवरा मेला, पुष्कर फेस्टिबल, अजमेर का उर्स, डूँगरपुर का वेणश्वर मेला, अलवर का भर्तृहरि मेला, चाकसू का शीतला माता का मेला विशेष प्रसिद्धि लिये हुए हैं। इनमें से कुछ उल्लेखनीय मेलों एवं उत्सवों का विस्तृत वर्णन निम्नलिखित हैं।

कैलादेवी का मेला

करौली जिले में, करौली से 25 कि.मी. दूर स्थित कैलादेवी का यह मन्दिर श्रद्धालुओं के लिए आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बना हुआ है। यहाँ प्रतिवर्ष चैत्र मास की शुक्ल अष्टमी मार्च–अप्रेल को भव्य मेला लगता है, जिसमें विभिन्न क्षेत्रों से विभिन्न जाति के लोग लाखों की संख्या में पहुँचकर मेले का आनन्द उठातें हैं। इसे लक्खी मेला भी कहते हैं। राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, पंजाब, दिल्ली, हरियाणा आदि स्थानों से लोग आकर कैलामैया के दर्शन कर मनौति मनाते हैं और प्रसाद–भभूत पाकर प्रसन्न हो चले जाते हैं। कुछ लोग तो पुत्र एवं धन्य–धान्य की कामना से कैलादेवी के मन्दिर तक कनक दण्डवत अर्थात पूरे मार्ग में साष्टांग दण्डवत करते हुए आते हैं। मैया भक्तों की कामनाएँ सदैव पूरी करती है।

मान्यता है कि यह यदुवंशी राजाओं की कुलदेवी है। यदुवंशी होने के कारण करौली राजवंश का संबंध भगवान कृष्ण से जोड़ा जाता है। क्विदंती है कि जब कंस ने वासुदेव और देवकी को कारागृह में डाल दिया था तब उसी कारागृह में देवकी ने एक बच्चे को जन्म दिया था। योगमाया ने कृष्ण को यशोदा के पास भेज दिया और स्वयं देवकी के यहाँ आ गई। कंस को जब पता चला कि देवकी के आठवीं संतान हो गई तो उसने देवकी से वह नवजात कन्या छीनकर उसे शिला पर पटककर मार डालना चाहा लेकिन वह कंस के हाथ से छूटकर आकाश की ओर उड़ गई। वहीं नवजात कन्या योगमाया बनकर भूमण्डल पर अवतरित हुई और कहते हैं कि यही करौली के त्रिकूट पर्वत पर कैलादेवी के नाम से विख्यात हुई। इस माता की एक और कथा भी प्रसिद्ध है। कहते हैं कि त्रिकूट पर्वत के आस–पास लोगों को नरकासुर नामक राक्षस बहुत सताता और डराता था। कैलादेवी ने काली रूपधारण करके उस राक्षस का इसी स्थान पर वध किया था। इतिहास कुछ भी रहा हो, लेकिन इसमें संदेह नहीं कि इस क्षेत्र के लोगों में जितनी श्रद्धा कैलादेवी में है उतनी अन्य देवी–देवताओं में नहीं है। इस देवी की पूजा सात्विक भाव से की जाती रहीं है। यहाँ किसी भी बकरे की बलि नहीं दी जाती, न ही मांस–मदिरा का प्रसाद चढ़ता। इसकी प्रतिमा कब बनीं और किसने बनवाई? इस विषय में कोई निश्चित मत नहीं है, हाँ यह कहा जा सकता है कि करौली के महाराजा गोपाल सिंह ने कैलादेवी के मन्दिर का नया भवन बनवाया तथा यात्रियों की सुख सुविधा के लिये एक धर्मशाला बनवाई। संगमरमर से निर्मित इसका मन्दिर अनूठी वास्तुकला और भव्य छतरियों के कारण श्रद्धालुओं को दूर से आकर्षित करता है। मन्दिर के मुख्य कक्ष में कैला मैया और चामुण्डा देवी की प्रतिमा है। मन्दिर के परिसर में एक भैरों का छोटा मन्दिर स्थित है जिसे स्थानीय भाषा में लोग लांगुरिया कहते हैं। देवी की प्रार्थना लांगुर को ही संबोधित करके की जाती है। कैलादेवी के मन्दिर के सामने बोहरा भक्त की एक छतरी भी है। कहते हैं कि वह पुरानी बीमारियों, खानदानी रोगों का झाड़ फूंककर इलाज करते हैं और लोगों के कष्ट दूर करते हैं। इस मन्दिर के कुछ दूरी पर बीजासनी माता का मन्दिर है। यह मन्दिर खोररी गाँव में होने के कारण इसे खोररी माता का मन्दिर भी कहते हैं। इसकी पूजा भी कैला माता की भाँति करते हैं। यहाँ भी रात्रि जागरण कराया जाता है। कैलादेवी मन्दिर के बिल्कुल पास कालीसिल नदी है जहाँ श्रद्धालु स्नान कर पापों को नदी में छोड़कर मन्नत माँगते है तथा धन–धान्य की कामना करते हैं।

भक्तजनों से कैला मैया का दरवार सदैव भरा रहता है। भक्तजन कैला माता के दरबार में फूल, नारियल, दुपट्टा, छत्र, चूड़ी, बिन्दी, मेहन्दी आदि चढ़ाकर तथा दीप जलाकर पूजा अर्चना करते हैं। पूजा पद्धति में रात्रि जागरण होता है। इस जागरण में कैला मैया भक्तजनों के माथे में प्रवेश कर भक्तों को आशीर्वाद भी देती है तथा दीन–दुखियों के दुखों को दूर करने के लिए भभूत, नारियल आदि प्रदान करती है। मां के दरवार में ढोल, मंजीरे बजाये जाते हैं एवं मां की जयजयकार होती है। इस मौके पर नर, नारी, बालक, युवक और वृद्ध सभी आत्म विभोर हो नाच उठते हैं। मंद और धीमी–धीमी लय के साथ गाये जाने वाले गीत जय घोष के साथ तीव्र स्वरों से गाये जाने लगते हैं। भक्तजन माथे पर मैया का दुपट्टा बांधकर झूमते हुए आनंदित हो उठते है। चाहे मैया का दरवार हो या पैदल चलने वाले राहगीर, मैया के गीत गाकर मैया को रिझाते है। इन गीतों में लांगुर को संबोधित करके ही देवी की प्रार्थना की जाती है। इनमें से कुछ लोकगीत द्रष्टव्य है–''कैला मैया के भवन में घुटवन खेलै लांगुरिया'' वहीं दो–दो स्त्रियों के मध्य लांगुरिया के अकेले खेलने की बात कही जाती है साथ ही वे अपनी मांगे भी मनवाती हैं–

''दो–दो जोगनी के बीच अकेलो लांगुरिया,
अकेलो लांगुरिया रे अकेलो लांगुरिया।
दो–दो जोगनी के बीच अकेलो लांगुरिया।
'एक जोगनी यों कहे रे, चूड़ौ लाजो मोय।
दूजी जोगनी यों कहे रे विछिया लाजो मोय।
दो–दो जोगनी के बीच अकेलो लांगुरिया।

वहीं स्त्रिया लांगुरिया को रस पिलाने के लिए भी आतुर हैं–

''चरखी चल रही बड़ के नीचे रसै पीजा लांगुरिया''

इन लोकगीतों का विस्तार अनेक कवियों के दोहे जोड़कर भी भक्तजन करते हैं–

''कैला तेरी गैल में रे, लम्बो पेड़ खजूर।
अरे, वापै चढ़कै देख ले रे, कैला कितनी दूर।''

इस मेले में मैया की मान्यता के साथ लांगुर की भी बहुत मान्यता है। स्त्री भक्तजन तो लांगुरिया पर बलिहारी जाती हैं वे तो यहाँ तक कहती हैं–'कुल्ला फूट पडयौ मोटर में, प्यासी मर गयी लांगुरिया'। लोकगीतों का यह आनन्द दर्शनार्थी वर्ष भर लेते हैं। मेले के अवसर पर तो यह स्थान काव्यस्थली बन जाता है। कैलादेवी का यह मेला लगभग 15 दिवस तक चलता है। राज्याश्रय मिलने के कारण इस मेले के लिए स्पेशल बसें लगायी जाती हैं। साथ ही यात्रियों के लिये ठहरने की अच्छी व्यवस्था भी की जाती है। श्रद्धालु लोग दान–पुण्य एवं भण्डारा करके पुण्य कमाते हैं। यह मेला आज देश में ही नहीं विदेशों मे भी ख्याति प्राप्त कर चुका है।

नागौर का मेला

राजस्थान के निर्माण से पूर्व नागौर जोधपुर रियासत का एक भाग था। इतिहासविदों तथा प्राचीन शिलालेखों के अनुसार इसका प्राचीन नाम अहिछत्रपुर था। यहाँ प्रतिवर्ष अनेक स्थानों पर विभिन्न मेले आयोजित होते हैं। 'राजस्थान पर्यटन विकास निगम, द्वारा प्रतिवर्ष नागौर में माघ–फाल्गुन माह अर्थात जनवरी–फरवरी में इस मेले का आयोजन किया जाता है। यहाँ राजस्थान का प्रमुख पशु मेला भरता है। यह मेला गाय, बैल, ऊँट और घोड़ों के क्रय–विक्रय के लिये प्रसिद्ध है। इनके मालिक रंग–विरंगी पगड़ी पहने दिखाई देते हैं। यहाँ के बैल पूरे भारत देश में प्रसिद्ध हैं। इन्हें नागौरी बैल कहा जाता है। मेले में लकड़ी, चमड़ा और लोहे

से बने घरेलु आवश्यकता का साजो–सामान पर्याप्त मात्रा में बेचा खरीदा जाता है। चार दिन चलने वाले इस उत्सव में अनेक खेल कूद प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं। संध्या के समय ऊँटों की दौड़ तथा मुर्गों और सांडो की लड़ाई दर्शकों को लुभाती है। इस मेले के दौरान राजस्थान पर्यटन विकास निगम द्वारा पर्यटन गाँव की स्थापना की जाती है। ठहरने और सामान रखने की सुविधाएँ, डीलक्स रूम, तम्बू और झोंपडियों में प्रदान की जाती है। पर्यटन गाँव आत्म निर्भर होते हैं। और उसे वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य के हिसाब से आकर्षक स्वरूप प्रदान करते हैं। नागौर का महल जो अपने भित्ति चित्र के लिये विख्यात है जो पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र होता है। यहाँ लगने वाले मेले में अनेक कलाकार अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। कठपुतली का खेल दिखाने वाले भाट यहाँ बहुतायत में हैं। यहाँ पाबूजी के भोपे रावण हत्था बजाकर पाबूजी के गीत गाते और फड़ दिखाते हैं। यहाँ के मेले में तेरहताली नृत्य करने वाले कामड़ जाति के लोग खूब मनोरंजन करते हैं। ये लोग देवी–देवताओं के सम्मान में नृत्य करते हैं।

लोक नाट्य का केन्द्र कुचामन इसी जिले में है। हस्तकला उद्योग में नागौर आज भी अग्रणी है। मेडता के खस के पंख एवं परदे, लकड़ी के खिलौनें हाथ करघे पर बनने वाला खेसला, सूती वस्त्र, कृषि औजार, धातु के बर्तन आदि मेले में खूब विकते हैं। यह मेला परवतसर में खूब भरता है जो भाद्र पद कृष्णा दशम से भाद्रपद शुक्ला एकादशम् तक खूब भरता है। इस मेले में तेजाजी के भी खूब गीत गाये जाते हैं। वस्तुत यह मेला पशु मेला के नाम से कीर्तिमान स्थापित किये हुए है।

नागौर के अन्य मेलों में मेड़ता का वलदेव पशु मेला जो माघ शुक्ला सप्तमी से पूर्णिमा तक भरता है। यहीं प्रतिवर्ष सावन के महीनें में चारभुजाजी का का मेला भरता है साथ ही मेडता रोड रेलवे स्टेशन के निकट फलौदी गाँव में प्रतिवर्ष पार्श्वनाथ का मेला भरता है। यहाँ सभी मतावलम्बी सम्मलित होते हैं। इस जिले की जायल तहसील क्षेत्र के गोठमांगलोद ग्राम में दधिमथी माता का प्राचीन मन्दिर है जहाँ प्रविर्ष नवरात्रा में भव्य मेले का आयोजन होता है। यह मेला नवरात्राओं में पूरे नौ दिन चलता है। इसी जायल तहसील के रोल स्थान पर रोलपीर साहब का प्रसिद्ध मेला लगता है जिसमें मुस्लिम समुदाय के लोग भारी मात्रा में भाग लेते हैं।

निष्कर्षतः नागौर में अनेक मेलों का आयोजन होता है लेकिन मूल रूप से यह क्षेत्र पशु मेला के लिए प्रसिद्ध माना जाता है। यहाँ विभिन्न नस्लों के पशुओं का क्रय–विक्रय होता है व्यापारी बहुत दूर–दूर से आकर पशुओं का क्रय करते हैं। विशेषकर नागौरी बैल इस क्षेत्र को प्रसिद्ध किये हुए हैं।

रामदेवरा मेला

रामदेवरा का प्राचीन नाम 'भणेचा' है। यहाँ लगने वाले मेले को 'रुणेचा' 'रुणिचा रामदेवरा' आदि नामों से जाना जाता है। यह स्थान जैसलमेर से लगभग 125 कि.मी. तथा पोकरण से 12 कि. मी. दूरी पर स्थित है। इस रामदेवरा ग्राम में लोकदेवता संत बाबा रामदेव का प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँ प्रतिवर्ष माघ और भाद्र पक्ष के शुक्ल पक्ष की द्वितीया से एकादशी तक भव्य मेला लगता है। यहाँ राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, दिल्ली आदि अनेक स्थानों से लाखो श्रद्धालु आकर बाबा के दर्शन कर अपनी पीड़ा एवं दुखों को दूर करते हैं।

कहा जाता है कि रामदेव जी तंवर वंशीय राजपूत थे जिन्हे मल्लीनाथ द्वारा पोकरण प्राप्त हुआ था लेकिन अपनी भतीजी के विवाह में उन्होंने पोकरण को दहेज में दे दिया तत्पश्चात उन्होंने रामदेवरा नामक गाँव बसाया और यहीं पर वि.सं. 1515 (सन् 1458) की भाद्र पक्ष शुक्ल एकादशी को इन्होनें जीवित समाधि ले ली। माना जाता है कि चन्द्रवंशी तपधारी तंवरों की वंश परम्परा में कुन्ती पुत्र अर्जुन की 72 वीं पीढ़ी में रामदेव जी का जन्म चैतसुदी पंचमी विक्रम संवत 1409 में हुआ। जैसा कि उल्लेख है–

''संवत चतुर्दश साल नव में, श्री भुज आप जगायो।
भणै रामदे चैत सुद पाँच, अजमल घर मैं आयो।।''

इनके पिता का नाम अजमाल तथा माता का नाम मैणादे था। रामदेव का विवाह अमरकोट के परमार क्षत्रियों के अन्तर्गत सोढ़ा राजपूत वंश के दलैसिंह की पुत्री नेतलदे के साथ हुआ। इनके सात पुत्र रत्न कहे जाते हैं, उनके नाम इस प्रकार है– सादोजी, देवराज, गरराज, महराज, भीवोजी, बांकोजी व जेतीजी है।

रामदेव जी समाज सुधारक थे और वे गुरु के महत्व को स्वीकार करते थे। मूर्तिपूजा और जाँति–पाँति के भेदभाव के कट्टर विरोधी थे तथा ईश्वर भक्ति एवं सत्संग पर जोर देते थे। इनके संत प्रभाव से अनेक चमत्कारी कार्य हुए इन्होंने बाल्यावस्था में ही सातलमेर में एक तांत्रिक भैरव का वध कर उसका आतंक समाप्त कर दिया। एक बार मक्का से आये पाँच पीरों को सबक सिखाने के लिए उन्होंने चमत्कार दिखाये। उन चमत्कारों को देखकर उन पीरों ने रामदेव से कहा कि ''–हम तो केवल पीर हैं किन्तु आप तो पीरों के पीर हैं'' इसी कारण उन्हें आज 'रामसा पीर' के नाम से भी जानते हैं। इसी ख्याति ने उन्हें साम्प्रदायिक सद्भाव का प्रतीक भी बना दिया।

रामदेव जी ने 'कामडिया पंथ' आरम्भ किया जिसमें उच्च जातियों एवं अछूत कही जाने वाली जातियों के सदस्य सम्मिलित हुए। इस पंथ के भक्त विशेषकर स्त्रियाँ 'तेरहताली' नृत्य करती है। तेरह मंजीरे भुजाओं और पैरों पर बांधकर, मुँह में तलवार और सिर पर पानी का घड़ा रखकर अद्भुत संतुलन बनाकर नृत्य किया जाता है। यह नृत्य मेले का मुख्य आकर्षण है। पुरुष भी वाद्ययंत्रों के साथ वादन करते हुए रामदेव जी का गुणगान करते हैं मेले में जाने वाले श्रद्धालु रामदेव जी की समाधि पर रंग विरंगी पताकाएँ एवं कपड़े के घोड़े चढाते हैं क्योंकि बाबा रामदेव जी का वाहन श्वेत घोड़ा था उनकी अश्वारोही प्रतिमाएँ जगह–जगह देखने को मिलती हैं। उनके पूजा संबंधी मंत्र में सौहार्द्र व कौमी एकता की भावना अभिव्यक्त होती है जैसे–

ओं नमो स्वेत घोड़ऽ स्वेत पलाण।
तिण चढ़ियउ अलख रहिमाण।।

इसमें उन्होंने अलख और अल्ला को एक मानकर साम्प्रदायिक सद्भाव स्थापित कर हिन्दु व मुस्लिम दोनों सम्प्रदायों के वे पूजनीय बने।

रामदेव जी दलितों के सच्चे मसीहा थे। उन्होनें समता का आदर्श पाठ पढ़ाया दलित जातियों को इस्लाम धर्म स्वीकार करने से उन्हें बचाकर हमारी सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध किया। वे परम तत्वों में गहरी आस्था रखते थे। स्वयं रामदेव जी ने चौबीस प्रमाणों में विविध विषयों की प्रेरणा दी। गुरु महत्ता, निज स्वरूप, अलख स्वरूप, बीज महत्ता, आगम वचन, भक्ति, ज्ञान व कर्मोपदेश आदि के साथ ही माया के वशीभूत भटकते जीव को उससे परिमुक्ति दिलवाकर अपने आपको पहिचानने (KNOW THEY SELF) का सद्मार्ग बतलाया। इन्हीं कार्यो से बाबा रामदेवजी को हमेशा के लिए याद किया जाता रहेगा। उनके लिए एक उक्ति भी प्रचलित है–

''जब तक गंगा में पानी, नभ में सूरज–चांद रहेंगे।
तब तक कंठ कंठ पर रामदे, तेरी मंगल याद रखेंगे।।''

ऐसे संत जो दुष्टों के दमनकर्ता एवं भक्तों के त्राणदाता हैं। वे हमारे राष्ट्रीय गौरव के लिए उपयोगी ही नहीं बल्कि पूरे विश्व के सर्वांगीण कल्याण एवं गौरवगान के शाश्वत व वेजोड़ प्रतिविम्व भी है। कुंभाकालीन युग में रामदेव जी को कलकी का अवतार माना

जाता था। स्वयं महाराणा कुंभा ने रामदेव जी की स्तुति की थी ''कीधी सेवा राणै कुंभे, आगै ने करि जोड़ै उभै।'' ऐसे अद्वितीय महापुरुष की आज न केवल भारत वर्ष को अपितु समग्र विश्व को आवश्यकता है।

रामदेव जी की समाधि पर सभी वर्गो के लोग मत्था टेकने पहुँचते हैं। इनके संबंध में अनेक प्रचलित कथाएँ हैं कि इन्होंने एक बनिये को पानी में डूबने से बचाया, मृत बच्चों को पुनः जीवन दान दिया तथा अनेक डाकुओं को अंधा कर दिया। कहते हैं यहाँ 'रामसर' तालाब स्वयं रामदेव जी ने बनवाया जिसमें स्नान कर श्रद्धालु पुण्य प्राप्त करते हैं। रामदेव जी की समाधि के चारों ओर एक विशाल मंदिर बना हुआ है। जिसे बीकानेर के महाराजा गंगासिंह ने सन् 1931 ई. में बनवाया था। यहाँ राम सरोवर, गुरुद्वारा, रामदेव जन्म स्थान, परचा वावडी, डालीवाई का मन्दिर विशेष दर्शनीय स्थल हैं।

इस लोकतीर्थ पर विभिन्न जाति, सम्प्रदायों की अनेक धर्मशालाएँ हैं। बाबा रामदेव के अनुयायियों ने रामदेव अन्न क्षेत्र नामक एक संस्था का निर्माण किया जिसका कार्य मेले के अवसर पर साधु एवं भिखारियों को निःशुल्क वितरण के लिए अन्न जुटाना है। यह समिति कोढ़ियों व अपंगों की भी सेवा करती है। इसी तरह हरिओम अन्न क्षेत्र समिति भी सेवा कार्यो में लगी हुई है।

मेले के दिनों में लाखों श्रद्धालु चूरमा–मिठाई, दूध–नारियल और धूप का प्रसाद चढ़ाते हैं साथ ही श्वेत अश्व तथा श्वेत पताका चढ़ाकर अपनी इच्छित कामना करते हैं। रामदेव जी के लोक कल्याणकारी सेवाओं एवं चमत्कारी कार्यों से भक्त जन इन्हें सदैव स्मरण करते हैं। इनके जीवन और चमत्कारी प्रदर्शनों से संबोधित हजारों वाणियां, लोकगीतों की माणिक्य–माला आज भी भक्त समाज के कंठो पर सुशोभित है। एक भजन की पंक्ति द्रष्टव्य है–

''पहलेडो पांव जूंजाला (स्थान का नाम है) दीदो,
दूजो देवरा माई ओ, रामा।''

मध्य युग में रामदेव जी के अनेक शिष्य भक्त थे इनमें जटगाजी नामक एक भक्त शिरोमणि थे। उल्लेख है कि एक बार रामदेव जी अपना चमत्कारी घोड़ा जटगाजी को थमाकर अदृश्य हो गये। 12 वर्ष बाद जब रामदेव जी लौटकर आये तब तक ये भक्त रामदेव जी की प्रतीक्षा में सूखकर कंकाल हो गये तब रामदेव जी ने पुनः इन्हें जीवन दान दिया तब से ही जटगा पहाड़ी मेवाड़ क्षेत्र में प्रसिद्ध मेला लगता है। ये मेले इन संतो के मंगलकारी कार्यों को चिरस्थायी रखने के लए भरते हैं रामदेव जी का नाम आज भी अन्य वीरों एवं संतो के नाम के साथ अजर और अमर है–

हरबू पाबू रामदे, मांगलिया मेहा।
पाँचो पीर पधारिया, गोगा नर जेहा।।

पुष्कर फेस्टिवल

पुष्कर राजस्थान के हृदय स्थल अजमेर जिले में स्थित है। यह अरावली पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा हुआ है। यह अजमेर से लगभग 11 कि.मी. उत्तर पश्चिम में है। यहाँ चार से अधिक मन्दिर है। इस सरोवर नगरी में प्रतिवर्ष कार्तिक माह यानि अक्टूबर–नवम्बर में 12 दिन तक उत्सव आयोजित होता है। पौराणिक दृष्टि से पुष्कर निर्माण की गाथाएँ रहस्य और रोमांच से परिपूर्ण है। पदम पुराण के छठे खण्ड में उल्लेख है कि किसी समय वज्रनाथ नामक एक राक्षस इस स्थान पर रहकर ब्रह्मा जी के पुत्रों का वध किया करता था। इस बात का पता चलने पर ब्रह्मा जी ने क्रोधित होकर उस पर कमल का प्रहार किया तथा उस राक्षस का वध कर दिया। उस समय जो कमल की पंखुडियाँ बिखरी वे तीन स्थानों पर गिरकर जल प्रवाहित करने लगी। ये तीनों स्थल ज्येष्ठ पुष्कर, मध्यम पुष्कर तथा कनिष्ठ पुष्कर कहलाये। दानव वध के बाद ब्रह्माजी ने इस स्थान पर एक यज्ञ करना चाहा लेकिन पत्नी सावित्री के सही समय पर न बैठने के कारण गायत्री से गंधर्व विवाह कर गायत्री को यज्ञ में बिठाना पड़ा। इससे सावित्री नाराज होकर रत्नगिरी पर्वत में समा गयी। वहाँ से एक जलधारा प्रवाहित हुई जिसका नाम आज भी सावित्री झरने के नाम से प्रसिद्ध है। उस स्थान पर सावित्री मन्दिर का निर्माण किया गया तथा वहीं गायत्री मन्दिर भी है। उल्लेख है कि सावित्री ने क्रोधवश ब्रह्माजी को शाप दे दिया कि इस स्थान को छोडकर ब्रह्माजी की कहीं भी पूजा अर्चना नहीं की जायेगी। संभवतः इसी कारण से देश में ब्रह्मा मन्दिर बहुत कम है।

पुष्कर आदि है अनादि है यह मूलतः तीर्थ स्थल है। इस क्षेत्र में कहावत प्रचलित है– 'सारे तीरथ बार–बार पुष्कर तीरथ एक बार'। यहाँ 52 घाट बने हुए हैं जिनमें बराहघाट, ब्रह्माघाट, गौ घाट, इन्द्रघाट, महादेव घाट, वंशी घाट, मुरली घाट, नृसिंह घाट, विश्राम घाट, बद्रीघाट, राम घाट, चीर घाट, जनक घाट, सप्तऋषि घाट आदि प्रमुख हैं।

यहाँ पुष्कर तीर्थों के अलावा भर्तृहरि की गुफा, ब्रह्माजी का मन्दिर, सावित्री मन्दिर, गायत्री मन्दिर, रंगनाथ जी का मन्दिर, बराह मन्दिर, रमा बैकुंठ मन्दिर, मान महल आदि दर्शनीय स्थल है। यहाँ अनेक यात्री तीनों पुष्करों की परिक्रमा करते हैं जो चौबीस कोश की परिक्रमा कहलाती है। लोग नारियल, फूल, चंदन की धूप से पूजन और तर्पणादि करते है तथा दीपक पत्तों पर रखकर पानी में छोड़ते हैं। यह दीपदान परम्परा अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं पौराणिक है। इस क्षेत्र में यह भी मान्यता है कि जो पुष्कर के पवित्र सरोवर में डुबकी लगाता है उसके सारे पाप धुल जाते हैं और वह स्वर्ग में स्थान प्राप्त कर लेता है। इसी धारणा से भक्तों की भारी भीड़ घाट के किनारे स्नान करने के लिए उमड़ पडती हैं।

यह स्थान अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है। यहाँ विदेशी पर्यटकों की भारी उपस्थिति रहती है। इन्होनें इस प्राचीन पवित्र तीर्थ के स्वरूप को बहुत विकृत किया है। इस संबंध मे वर्ष 1994 की घटना याद की जा सकती है जब इजरायली नृत्यांगना मेले के दौरान शराब पीकर नृत्य करने के दौरान नग्न हो गई तब इस तीर्थ को बहुत आघात पहुँचा। कुछ भी हो पुष्कर विदेशी पर्यटकों को आकर्षित किये रहता है।

पुष्कर का एक और आकर्षण का केन्द्र यहाँ भरने वाला पशु मेला है जो फेस्टिबल के रूप में मनाया जाता है। यहाँ गाय, ऊँट, घोडें, और बैल सभी क्रय–विक्रय किये जाते हैं। मेले में पुरुष और स्त्रियाँ अपने हाथ और शरीर के अन्य भागों में गुदना खुदवाती हैं। संध्या के समय पर्यटकों के मनोरंजन हेतु लोकनृत्य, संगीत अन्य नृत्य के कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। ऊँट, घोड़े और गधे की दौड़ पर्यटकों के लिए आकर्षित करती है। इस अवसर पर पर्यटन विभाग द्वारा अनेक व्यवस्थाएँ तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। मेले में मोहरबन्द मालाएँ, घंटियाँ, हाथी दाँत का सामान, झूले, रकाब, काटिया, पीतल के बर्तन, छपे हुए राजस्थानी कपड़े आदि बेचे जाते हैं। मनिहारी तथा अन्य सौन्दर्य प्रसाधनों की छोटी–छोटी असंख्य दुकाने लग जाती है। यहाँ विभिन्न खेलों का आयोजन होता है। राजस्थान की आदि संस्कृति इस मेले में जीवंत हो उठती है, जब पारंपरिक वेशभूषा में भोपा–भगत व भाट जातियाँ वीर गाथाओं का गायन करती हैं। यह मेला विश्व भर में प्रसिद्ध है।

संदर्भ

1. राजस्थान ज्ञान कोश, डॉ. मोहन लाल गुप्ता
2. राजस्थान दिग्दर्शन, फूलचन्द अग्रवाल
3. राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, संपादक– डॉ. जयसिंह नीरज एवं डॉ. भगवती लाल शर्मा
4. राजस्थानः संस्कृति, कला एवं साहित्य, डॉ. प्रेमचन्द गोस्वामी
5. राजस्थान का इतिहास, डॉ. गोपीनाथ शर्मा